# हाथी की फाँसी

गणेशशंकर विद्यार्थी

हिन्दी ADDA

# हाथी की फाँसी

कुछ दिन से नवाब साहब के मुसाहिबों को कुछ हाथ मारने का नया अवसर नही मिला था। नवाब साहब थे पुराने ढंग के रईस। राज्य तो बाप-दादे खो चुके थे, अच्छा वसीका मिलता था। उनकी 'इशरत मंजिल' कोठी अब भी किसी साधारण राजमहल से कम न

थी। नदी-किनारे वह विशाल अट्टालिका चाँदनी रात में ऐसी शोभा देती थी, मानो ताजमहल का एक टुकड़ा उस स्थल पर लाकर खड़ा कर दिया गया हो। बाहर से उसकी शोभा जैसी थी, भीतर से भी वह वैसी ही थी। नवाब साहब को आराइश का बहुत खयाल रहता था। उस पर बहुत रुपया खर्च करते थे और या फिर खर्च करते चारों ओर मुसाहिबों की बातों पर। उम्र ढल चुकी थी, जवानी के शौक न थे, किंतु इन शौकों पर जो खर्च होता, उसे कहीं अधिक यारों की बेसिर-पैर की बातों पर आए दिन हो जाया करता था। नित्य नए किस्से उनके सामने खड़े रहते थे। पिछला किस्सा यहाँ कह देना बेज़ा न होगा। यारों ने कुछ सलाह की और दूसरे दिन सवेरे कोर्निश और आदाब के और मिज़ाजपुर्सी के बाद लगे वे नवाब साहब की तारीफ में ज़मीन और आसमान के कुलाबे एक करने। यासीन मियाँ ने एक बात की, तो सैयद नज़मुद्दीन ने उस पर हाशिया चढ़ाया। हाफिज़जी ने उस पर और भी रंग तेज़ किया। अंत में मुन्ने मिर्जा ने नवाब साहब की दीनपरस्ती पर सिर हिलाते हुए कहा, "खुदावंद, कल रात को मैंने जो सपना देखा, उससे तो यही जी चाहता है कि हुजूर के कदमों पर निसार हो जाऊँ और जिंदगी-भर इन पाक-कदमों को छोड़कर कहीं जाने का नाम न लूँ।"

यारों ने बड़े शौक से पूछा, 'मिर्जा साहब, क्या ख्वाब था? ज़रा हम भी तो सुनें।" मुन्ने मिर्जा, "क्या कहूँ, उसका जितना खयाल करता हूँ, उतना दिल पाक जज्बात से पुर और मसर्रत से उछलने लगता है। नींद टूट जाने के बाद भी यही जी चाहा कि अभी ख्वाब को देखता हूँ। अल्लाह! अल्लाह! हुजूर भी कितने बड़े वली अल्लाह हैं। मुझे तो कभी खयाल भी न हुआ कि हुजूर के कदमों को बोसा दूँ और जिंदगी-भर हुजूर की जूतियाँ सीधी करता रहूँ। क्या ख्वाब था, कितना मुबारक! कितना पाक!"

मियाँ यासीन- "भाई कुछ कहोगे भी?"

मुन्ने मिर्जा- "उस ख्वाब के महज़ ख्याल से बंद में आ जाता हूँ। जी चाहता है कि क्या पाऊँ और हुजूर को सिर काट करके लुटा दूँ।"

नवाब साहब- "मिर्जाजी, आखिर ख्वाब भी तो बतलाइये। आपने क्या देखा? उसे भी तो सुनें!"

मुनने मिर्जा- “हाँ, हाँ, हुजूर, ज़रूर-जरूर उसे सुनाता हूँ। रात को दस बजे जो सोया था तो तीन का घंटा बज रहा था, उस वक्त आँख खुली। मैंने सोचा, अभी तो सवेरा होने में बहुत देर हैं, फिर चारपाई पर पड़ा रहा। कुछ यादे-इलाही में मसरूक था कि आँख झपक गयी। ख्वाब क्या देखता हूँ कि मेरे कंधे पर पर जम आए हैं और मैं उड़ रहा हूँ। उड़ता-उड़ता मक्का शरीफ में पहुँच गया। पहले काबा के चारों तरफ चक्कर लगाता रहा। आसपास के पुरनूर नजा़रे से जब दिल सेर हो गया, तब मैंने भीतर कदम रखा।

देखता क्या हूँ कि एक बड़ा लंबा-चौड़ा मैदान है, उसमें बहुत-से बड़े-बड़े बुजुर्गवार एक सफेद फर्श पर बैठे हुए हैं, आपस में कुछ बातचीत कर रहे हैं और कुछ ऐसा मालूम हुआ कि दुनिया में इस वक्त पाक रूहों में उनके मुताल्लिक कुछ जिक्र था। इतने में क्या देखता हूँ कि वे सब उठकर खड़े हो गये और कतार बाँधने लगे। खाक न समझा कि माजरा क्या है? मैं उन लोगों के पीछे की कतार के पीछे खड़ा हो गया। वे सब नमाज़ पढ़ने लगे। मैं कुछ चकरा-सा गया था। एक साहब ने मुझे इशारा किया कि तू भी नमाज में शामिल हो। मैं फौरन ही शामिल हो गया। पहली रकात के बाद मैंने जो सिर उठाकर आगे देखा तो मेरे ताज्जुब का कोई ठिकाना न रहा। देखता क्या हूँ कि सब जमाजियों के आगे पेश-इमाम की जगह पर हुजूर नवाब साहब हैं और वे ही नमाज पढ़ा रहे हैं।

उस वक्त खयालात का एक अजब दरिया मौजज़न था। सब नमाज़ पढ़ रहे थे और इबादत में मसरूफ थे, मगर मैं था कि इस खयाल में कि हुजूरवाला यहाँ कहाँ, मैं तो आपको घर छोड़ आया था। हुजूर यहाँ कैसे और कब पहुँचे और किस तरह इन पाक बुजुर्गों के घर इमाम हो गये? पता नहीं कितनी देर तक मैं उसी खयाल में गलता पेचाँ रहा। मेरा ध्यान उस वक्त टूटा जब मेरे कान में यह आवाज पड़ी, ‘ऐ नेकबख्त, देखता नहीं, ये सब दुनिया की पाक रूहें हैं और जो बुजुर्ग इनका पेश-इमाम है वह इस वक्त दुनिया में सबसे ज्यादा दीनदार और अल्लाहताला का प्यारा है।

मैंने जब नज़र उठायी तो देखता क्या हूँ कि सामने की रूहें गायब हैं और मेरे पास खड़े हुए एक बड़ी भारी सफेद दाढ़ीवाले बुजुर्ग मुझसे ये अलफाज फरमा रहे हैं। मैं बहुत आजबी से आदाब बजा लाने के लिए झुका। झुकते ही कुछ शोर हुआ। आँल गयी। देखाता हूँ कि अपनी चारपाई पर पड़ा हूँ और बाहर मुर्ग कुकड़-कूँ, कुकड़-कूँ बोल रहा

है। बिस्तरे से उठ पड़ा। खुदा को सिजदा करके मैंने दिल में कहा, मेरे मालिक का यह रूतबा! इसका तो मुझ नाकिस-उल-अक्ल को कभी खयाल भी न हुआ था। उस वक्त से खुशी से दिल बाग-बाग है। मियाँ यासीन, तुम्हीं कहो, यह क्या कम खुशनसीबी है कि हम लोग हुजूर ऐसे नेक-नीयत और पाक-इंसान की खिदमतगुज़ारी में है जिनको दुनिया के बड़े-बड़े बुजुर्ग तक अपना सदीर मानते हैं।"

मियाँ यासीन- "वल्लाह, आँखे खुल गयीं। तुम्हारा ख्वाब क्या है, हम गुनाहों में फँसे हुए लोगों के लिए हर्मे-वसीरत है। तुम्हें आज यकीन हुआ कि हुजूर के अंदर दुनिया की एक बड़ी भारी हस्ती है।"

हाफिज़जी- "सच है, सच है। हुजूर की पाकीज़गी और दीनदारी का इससे बढ़कर और सबूत ही क्या हो सकता है कि दुनिया के बड़े-बड़े बुजुर्गहुजूर की सरपरस्ती के लिए फिरेंगे।"

सैयद साहब ने कहा- "दुनिया में हुजूर से बढ़कर दीनदार कौन है? मक्का-मुकद्दस में बड़े-बड़े बुजुर्गों की पेश-इमामी का हासिल होना कोई मामूली बात नहीं है। हुजूर की खुदा-परस्ती हफ्त-अकालीम में अपना असर रखती है। बड़े-बड़े औलियायों को जो बात नसीब नहीं हुई वह हुजूर को नसीब हुई है। इससे बढ़कर खुशकिस्मती और क्या हो सकती है? मैं तो एक अदना आदमी हूँ, हुजूर के दमों पर हमेशा निसार रहता हूँ, मगर इस वक्त अगर खुदा ने ज़र दिया होता तो इस खुशी में लुटा देता और कम से कम आज के दिन तो शहर-भर के किसी मोहताज को भूखा न रहने देता।"

नवाब साहब- "मिर्जाजी, क्या सचमुच रात को मैं मक्के शरीफ में पहुँच गया था! तुम्हें धोखा हो गया होगा। तुमने किसी और को देखा होगा और समझ गये होंगे कि नवाब हैं। आँखों को अकसर धोखा हो जाता है।"

मुन्ने मिर्जा- "हुजूर, मैंने तो ख्वाब की बात कहीं है, मगर ख्वाब बड़े मारके के हुआ करते हैं। खासकर सुबह का देखा हुआ। फिर इस ख्वाब की तस्वीर तो हुजूर किसी से भी पूछें तो वह यही कहेगा। कि हुजूर के कदम चूम लेने चाहिए और हुजूर पर सब कुछ लुटा देना चाहिए।"

यासीन मियाँ- “सच है हुजूर, यह ख्वाब ऐसा ही है। मैं तो हुजूर को पहले ही से पहुँचा हुआ समझता रहा हूँ। मुझे तो हुजूर की जात पर जो अकीदा है, उसे किसी तरह जाहिर करूँ? कलेजा चीरकर अगर देखा जाए तो हुजूर देखेंगे कि वह हुजूर की अकीदत से रँगा हुआ है, और जब से मैंने इस ख्वाब कोसुना है तब से यही जी चाहता है कि इस खुशी में तन के कपड़े तक उतारकर गरीब को दे डालूँ।”

नवाब साहब- “तुम क्यों करोगे! गरीबों के लिए जो कुछ कहो, वह हो जाए। अच्छा, खजांची को बुलाओ। एक हज़ार रुपये ले लो, और आज इसी खुशी में मोहताजों को कोठी के सामने, वह जो चाहें, उन्हें दोनों वक्त खिला दो।”

दोपहर से लेकर रात तक नवाब साहब की कोठी के सामने बहुत-से-गरीब मोहताज जमा थे। उनको खाना दिया गया, किसी को पेट-भर और किसी को अधपेट। किसी को चना-चबेना और किसी को पूड़ी-कचौड़ी।

वे सब निपटा दिए गये। शेष रकम मुसाहिबों और नौकर-चाकरों ने चुपचाप घोंट ली। नवाब साहब ने समझा, मोहताजों को खूब मिला और उनकापुण्य और भी बढ़ा और मुसाहिबों ने सोचा कि अच्छा मूर्ख बनाया और दूसरे अवसर की घात में रहने लगे।

नवाब साहब की महफिल जमी थी। मुसाहिब लोग करीने से अदब के साथ बैठे हुए थे। नवाब साहब मसनद लगाए लखनऊ की बढ़िया खुशबूदार तंबाकू-वाले हुक्के की लंबी सटक को मुँह में लगाए यारों की खुशगप्पियाँ सुन रहे थे। कभी-कभी बची में खुद भी कुछ इरशाद कर दिया करते थे। पिछले सफर का जिक्र था। नवाब साहब और उनके हाली-मुहाली बंबई गये थे। पहले बंबई की खूबसूरत इमारतों, उसकी शानदार सड़कों, चौपाटी, जहाज़ों आदि का जिक्र होता रहा और फिर उसके बाद जी.आई.पी.आर. की बढ़िया गाड़ियों की तारीफ होती रही। बीच में नवाब साहब ने फरमाया- “अल्लाह! रेल भी कितने आराम की चीज़ है। अजी यह किसने बनाई और कब से बनी है?”

मुन्ने मिर्जा- “हुजूर, ठेकेदारों ने बनाई है। बहुत दिन हुए तब बनी थी।”

हाफिज- “ठेकेदार बनावेंगे अपना सिर! हुजूर, फिरंगियों ने रेल चलाई। उनके दिमाग, से रेल निकली।”

मियाँ यासीन- “हुजूर, इन्हें नहीं मालूम। रोम के सुल्तान ने सबसे पहले रेल चलाई। रोम के सुल्तानों से बढ़कर दुनिया में कोई बादशाह नहीं। फिरंगी उसके सामने क्या है? फिरंगियों की इस पोशाक को आपने गौर से मुलाहिजा़ फरमाया है।”

नवाब- “क्यों? क्या बात है?”

मियाँ यासीन- “इनकी पतलून अपने साथ एक तवारीखी वाकया रखती है किसी ज़माने में रोम के सुल्तान ने फिरंगियों को पकड़-पकड़कर गुलाम बनाया था और उनको यह पतलून इसलिए पहनाई कि हमेशा दस्त–बस्ता खड़े रहें।”

मियाँ- “हाँ, हुजूर और ये रेलें जब पहले-पहल रोम के सुल्तान ने चलाई तब उनसे यह काम नहीं लिया जाता था जो इस वक्त लिया जाता है।”

नवाब साहब- “जो उनसे क्या काम लिया जाता था?”

मियाँ यासीन- “हुजूर, हज़रते सुल्तान उस वक्त इसे अपनी मुअज्जिज रिआया की शान के खिलाफ समझते थे कि उसका कोई फर्द रेल पर सवार हो। रोम की लाइंतहा सल्तनत का कोई भी इज्जतदार आदमी रेल पर सवार नहीं हुआ करता था। रेलों पर फिरंगियों के ज़रिए शहरों का कूड़ा-करकट और मैला ढोकर बाहर जंगल में फेंका जाया करता था। यह तो अब कुछ दिनों से फिरंगियों ने रेल के भाप में मलका हासिल कर लिया है और उसे सजाकर उससे आदमियों की सवारी का काम लेने लगे। लेकिन हुजूर, अब भी रोम की वसीयत सल्तनत में अरब, हस्त, तातार, ईरान, ईराक, कराकश वगैरह दुनिया के बड़े-बड़े मुल्कों में रेल में किसी भले आदमी का सवार होना बहुत मायूस समझा जाता है।

नवाब साहब- “क्यों जी, अब इन फिरंगियों ने रेल को बहुत फरोज दे डाला है।”

हरचरन भाट पीछे बैठे हुए थे। उन्होंने चुप रहना उचित न समझा। वे कुछ देर से कुछ सोच रहे थे। इस बार मियाँ यासीन या और कोई नवाब साहब की बात का कोई उत्तर देने के लिए जबाँ हिलाएँ, उससे पहले ही रायजी ने कहा-“हुजूर फिरंगियों ने तरक्की की तो ज़रूर, मगर काली माई की मर्जी के बिना रेल का पहिया घूम नहीं सकता। रेल

जब अपने स्थान से चलती है तब सबसे पहले काली माइया के नाम पर इंजन के सामने एक काला बकरा काटा जाता है और उसकेक खून का टीका इंजन केक माथे पर लगाया जाता है। अगर ऐसा न हो, रेल टस-से-मस न हो।"

सैयद नजमुद्दीन से न रहा गया। वे बीच में ही रायजी की बात काटकर बोले, "हुजूर, ये रायजी हैं पूरे चोंच। क्या बात लाए हैं! कालीजी के लिए बकरा कटता है और इंजन के माथे पर टीका लगाया जाता है। बूढ़े हो रहे हो, लेकिन रहे निरे बुद्धू ही। इंजन भाप के ज़ोर से चलता है। उसके लिए न काली माई के बकरे की ज़रूरत है और न गोरी माई की बिल्ली की। हुजूर, यह सब अक्ल का करिश्मा है। रोम और ईरान से इस अक्ल का सिलसिला हुआ। फिरंगियों ने तो नकल की। लेकिन खुदा की कसम, ऐसी नकल की कि इस वक्त उनकी दुनिया-भर में धूम है। इसवक्त तो इस मुल्क में जिधर देखो उधर फिरंगी और उसकी अक्ल के नज़ारे नज़र आते हैं। हाँ, हुजूर, अब बहुत देर हो गयी है। मुझे एक खबर और गोश-गुजार करना चाहता है। कहीं भूल न जाउँ इसलिए फौरन ही कह देना ज़रूरी समझता हूँ। परसों अपने शहर में एक बड़ा अजीब वाकया होने वाला है?

नवाब साहब (बहुत जल्दी से) - "वह क्या? वह क्या है? खैरियत तो है?"

सैयद नजमुद्दीन –"जी हुजूर, सब खैरियत है। घबराने की कोई भी बात नहीं। हो जाएगी। बड़े-बड़े रईस जाने वाले है।"

नवाब साहब- "अच्छा! रईस लोग जा रहे हैं तो हम भी चलेंगे। दारोगा को हुक्म दो कि तैयारी करे। पाँच बजे बहुत अँधेरा रहता है। जाड़े के दिन हैं। वक्त बहुत खराब है।"

सैयद- "ये फिरंगी बड़े चलते-पुर्जे होते हैं। उन्होंने यह वक्त जानबूझकर रखा, जिससे लोग पहुँच न सकें और इस दिलचस्प तमाशे को न देख सकें।"

नवाब- "खैर, कोई हर्ज़ नहीं। हम लोग चलेंगे। बावर्ची पहले से पहुँच जाए और खाना तैयार रखे। दारोगा वहाँ आराम का पूरा इंतजाम रखे।"

मुन्ने मियाँ- "जी, जाड़ा बहुत है। हम लोग, कोई बात नहीं, जहाँ हुजूर हों, वहाँ हम खादिमों का पहुँचना हर तर लाज़िमी है। अगर जाड़े से कुछ तकलीफ....।

नवाब- "नहीं जी, जाड़े से तकलीफ क्यों हो। दारोगा, इन लोगों को कश्मीर के दुशाले की जोड़ियाँ दे देना और वहाँ आराम करने का सब बंदोबस्त कर रखना।"

नवाब साहब को रात को बहुत देर तक नींद नहीं आई। हाथी की फांसी के लिए छोटे-बड़े सभी को, बेगम साहिबा को, जब मनाया तब वे भी तैयार हो गयीं। बाँदी, मामा और मुगल चाकर, मुंशी और मुसाहिब भी कमर-बस्ता थे। हर सामान की तैयारी का कहना ही क्या! शाम ही से झूलन पीर के मैदान में खास तौर से आराइश की गयी। बेगम साहिबा और उनकी सहेलियों के लिए अलग अच्छा प्रबंध था। मुसाहिबों को शाम ही वे बढ़िया दुशाले मिल गये। उन्हें ओढ़कर वे नवाब साहब को, जमींदारों को सलाम करने पहुँचे। दुआएँ देते हुए कहने लगे कि हुजूर ज़मीन और आसमान कायम है तब हुजूर का इकबाल कायम रहे। नवाब साहब मुसाहिबों की तारीफ से बहुत खुश हुए। सैयद नजमुद्दीन ने बहुत विनय के साथ प्रार्थना की- "हुजूर के गुलामज़ादे की तबीयत बहुत खराब है। बुखार आज तीन दिन से नहीं उतरा है।

अगर इजाज़त हो तो बंदा दरे-दौलत पर हाजिर होने की बजाय सीधे ही मैदान में पहुँच जाय।" नवाब साहब ने इजाज़त दे दी और सैयद ने नवाब साहब को झुककर सलाम किया। दस बजे रात नवाब साहब आराम के लिए तशरीफ ले गये। हुक्म हुआ कि ठीक चार बजे सवेरे चलना होगा, गाड़ियाँ और पालकियाँ तैयार रहें और मैदान में पहले ही आराम और नाश्ते का बंदोबस्त रहे। कुछ इस इंतज़ाम में और कुछ नई बात को देखने के इश्तयाक में उस दिन नवाब साहब की कोठी में बहुत-से लोगों को नींद नहीं आई। तीन बजे रात ही में कोठी के सामने सवारी गाड़ियाँ और पालकियाँ लगने लगीं। चार बजे नवाब साहब और बेगम साहिबा को जगा दिया गया। तैयार होते-होते कुछ समय लग गया। तब भी पाँच बजे से पहले ही सब लोग सवारियों पर सवार हो गये और यात्रा शुरू हो गयी। मैदान शहर से तीन मील दूर था। खूब सर्दी का मौसम और उस पर अँधेरी रात। लोग सर्दी से अकड़े जाते थे। पालकियों के कहारों तक का बुरा हाल था। किंतु कदम बढ़ाए जाते थे। साढ़े पाँच बजे करीब मैदान की अमराई में पहुँचे। सब लोग खेमों में जाकर अँगीठियों से सेंकने लगे। मैदान में अँधेरा था। कहीं न कोई आदमी

दिखाई देता था और न किसी का शोर ही था। नवाब साहब ने फरमाया- “हम लोग बहुत पहले आ गये। यहाँ तो अभी कोई भी नहीं आया।”

“और कोई आता भी कैसे? कितनी सर्दी है, कितना अँधेरा था!” मुन्ने मिर्जा ने हाँ-में-हाँ मिलाई और कहा- “हुजूर, इतने सवेरे कौन आ सकता है? यहाँ तो हुजूर ही का काम था। हुजूर रोज़ चार बजे सवेरे यादे-इलाही में मसरूफ हो जाते हैं इसलिए हुजूर के लिए कोई नई बात नहीं।”

यासीन मिर्जा़ ने कहा- “सच है, हुजूर को जगाने की ज़रूरत ही न पड़ी। जब चौकीदार ने आया से अर्ज़ किया कि हुजूर को जगा दो तो आया ने जवाब दिया कि हुजूर पहले से ही जाग रहे हैं, यादे-इलाही में मसरूफ हैं, याद-दिहानी किए देती हूँ।

हाफिजजी भी पीछे नहीं रहने वाले थे। वे बोले- “हुजूर का यह कायदा कुछ आज ही का नहीं है। मेरे चाचा कहा करते हैं कि हुजूर छुटपन से ही चार बजे सुबह से यादे-इलाही में मसरूफ हो जाते थे। मेरे चाचा कहते थे कि एक बार का जिक्र है कि हुजूर आधी रात तक जागने की वजह से चार बजे न जाग सके। पाँच बजे नींद टूटी तब आपको बहुत अफसोस हुआ। आप नौकर पर बहुत राजा़ हुए कि तूने चार बजे जगाया क्यों नहीं? फिर उस दिन से आप दिन-भर याद-खुदाए मसरूफ रहे और जिस नौकर को गफलत की वजह से आपने डाँट बतलाई थी वह तीसरे दिन ऐसा बीमार पड़ा कि महीने भर कके बाद चारपाई से उठ सका।

नवाब साहब ने फरमाया- “अभी हाथी की फाँसी में देरी मालूम होती है। कुछ धूप निकल आवे तब लुत्फ भी आएगा। उस वक्त तक हम लोग चाय और नाश्ते से भी फरागत पा जाएँगे। नमाज़ के बाद इन कामों को कर डालना चाहिए।”

सब लोगों ने नमाज़ पढ़ी। जो महीने में एक बार भी नमाज़ की एक रकात न पढ़ते थे वे भी इस समय बड़ी खूबी के साथ नमाज़ पढ़ रहे थे। नमाज़ खत्म होने के बाद दस्तरखान बिछा, गरम-गदम बढ़िया जाफरानी चाय आई। मेवे, कबाब और कोफ्ते और दूसरे लजीज़ सामान रखे गये। बेगम साहिबा का अलग इंतजाम था और नवाब साहब का अलग। खाते-पीते सात बजे। सूर्योदय हुआ। धूप फैल चली। नवाब साहब

रफीकों के साथ बाहर निकले। उन्होंने देखा कि मैदान खाली पड़ा है, दो-चार आदमियों के सिवा, जो इधर-उधर जा रहे थे, दूर-दूर तक किसी का पता नहीं है। न कहीं हाथी दिखाई देता है और न कोई हजूम ही। सैयद नज़मुद्दीन का भी कहीं पता नहीं था। उसकी बहुत तलाश की गयी, मगर कहीं भी उनका नामोनिशान न मिला। लोग इधर-उधर गये। मुसाहिबों ने दौड़ लगाई। नवाब साहब ने भी आँख फाड़-फाडकर सब तरफ देखा। बेगम साहिबा और उनकी सहेलियों और नौकरानियों ने भी चिकों के भीतर से बहुत कुछ झाँका। परंतु न हाथी दिखाई दिया और न भीड़ ही। बहुत देर तक इंतजार रहा। सात के साढ़े सात बजे, साढ़े सात के आठ बजे और आठ के साढ़े आठ परंतु कहीं कोई ऐसी बात नज़र न आई जिससे यह समझा जाता कि मैदान में हाथी क्या लोमड़ी को ही फाँसी होने वाली है। किसी राहगीर से जब पूछा गया कि भई, हाथी को फाँसी कब होगी, तब उसने पूछने वाले की तरफ देखा और फिर आगे का रास्ता नापा। मगर पूछने वाले साहब हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गये तो उसने झींककर यही उत्तर दिया कि 'कहीं घास तो नहीं च गये?' तो? अंत में बहुत इंतजार के बाद नवाब साहब ने झल्लाकर हुक्म दिया कि सवारियाँ तैयार हों, हम वापस जाएँगे।

उस दिन नवाब साहब बहुत नाराज़ रहे। किसी की हिम्मत न थी कि उनसे कुछ कहता। सैयद नज़मुद्दीन पर तो वे बेतरह बिगड़े। तीसरे पहर वे आकर अपने बाहरी कमरे में बैठे। थोड़ी देर बाद वे दिखाई दिए। आकर जमींदोज सलाम करके बैठ गये। नवाब साहब देखते ही उन पर बरस पड़े। बोले- "तुम बड़े नामाकूल हो। यह क्या हरकत की थी? हमें कितनी तकलीफ हुई और बेगम साहिबा कितनी परेशान हुई! तुमने इस तरह का चकमा क्यों दिया? दूर हो मेरी आँखों के सामने से, नमकहराम कहीं का!" सैयद नज़मद्दीन ने बहुत आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि हुजूर, खता मुआफ हो। मैं समझा नहीं। इस गुलाम से आज तक ज़र्रा बराबर भी नमकहरामी हुई हो तो जो चोर की सज़ा सो इसकी सज़ा। हुजूर की नाराज़गी मेरे लिए कहरे खुदा से कम नहीं। खता हो, तो सज़ा मिले, मगर हुजूर नाराज़ न हों।

नवाब साहब- "शरम नहीं आती, कितना धोखा दिया! क्या बात गढ़ी कि हाथी को फाँसी होगी। हज़ारों आदमी तमाशा देखने आवेंगे। इतनी रात में, इतनी सर्दी में हम लोग इतनी दूर गये। वहाँ हाथी और हजूम क्या, तुम्हारी शक्ल तक न दिखलाई दी।

बड़े नामाकूल हो। बस, अब इसी में खैरियत है कि तुम यहाँ से चले जाओ और हरगिज कभी अपनी सूरत न दिखलाओ।

सैयद नजमुद्दीन हाथ बाँधकर बोले- "हुजूर, मेरी ज़रा-सी गलती नहीं अगर गलत हो तो गर्दन-जदनी के काबिल समझा जाऊँ। मैं ठीक पौने पाँच बजे मैदान में पहुँचा। उस वक्त फाँसी की तैयारी हो चुकी थी। फाँसी की टिकटी खड़ी थी। मशालों की रोशनी तो हो रही थी। बहुत तो नहीं लेकिन पाँच सौ से ज्यादा आदमी वहाँ जमा थे।

नवाब साहब- "झूठ-झूठ! मुझे तो आदमी क्या, चिड़िया भी न दिखाई दी।"

सैयद- "हुजूर, जानबख्शी हो, मेरी बात सुन लीजिए और फिर अगर मेरी खता हो तो मुँह काला करके और गधे पर सवार कराया जाकर शहर-बदर कर दिया जाऊँ।"

नवाब साहब- "अच्छा कहो।"

सैयदजी- "तो मैं जिस वक्त पहुँचा उस वक्त फाँसी होने की पूरी तैयार हो चुकी थी। मेरे पहुँचने से मुश्किल से कोई पाँच मिनट के बाद ही हाथी लाया गया। उसके पैरों में मोटी-मोटी लोहे ही जंजीरें पड़ी हुई थीं। उसके चारो तरफ 109 तिलंगे थे जिनके हाथों में बहुत पैने बल्लम थे। धीरे-धीरे हाथी टिकटी पर लाया गया। उसके गले में फाँसी का फंदा छोड़ा गया। फिर दो फिरंगी आए। टिकटी के पास एक पहियेदार मशीन रखी हुई थी जिसमें फाँसी की रस्सा लिपटा हुआ था। एक फिरंगी मशीन के पास खड़ा हो गया और दूसरा हाथ में घड़ी लेकर सामने। ज्यों ही पाँच के घंटे पर मुँगरी पड़ी, त्यों ही धड़ी वाले फिरंगी ने ज़ोर से कहा, 'वन।' उसके वन कहते ही सब चुपचाप खड़े हो गये। उसने फिर कहा, 'टू' और उसके बाद ही उसने कहा, 'थ्री।' उसका तीन कहना था कि मशीन के पास खड़े फिरंगी ने कुछ इशारा किया और मशीन घूमने लगी। इधर मशीन घूमने लगी, उधर हाथी की गर्दन ऊपर उठने लगी और दम की दम में वह फड़फड़ाता हुआ ऊपर लटक गया। उसकी जान निकलने में मुश्किल से एक मिनट लगा। यह सब काम पाँच बजकर एक मिनट पर खत्म हो गया।

नवाब- "क्या कहा, पाँच बजकर एक मिनट पर?"

सैयद- “जी हाँ, हुजूर, फिरंगी लोग वक्त के बड़े पाबंद होते हैं। इसलिए हमेशा अपने पास घड़ी रखते हैं। क्या मजाल जो वक्त वे मुकर्रर करें उससे उनका काम एक पल के लिए इधर से उधर हो जाए।”

नवाब साहब (मुसाहिबों से) - “हम लोग किस वक्त पहुँचे थे?”

मुन्ने मिर्जा- “हुजूर, हम लोग साढ़े पाँच के बाद पहुँचे होंगे।”

सैयद (जल्दी से)- “तो बात यह है। हुजूर तो साढ़े पाँच बजे पहुँचे। उस वक्त तक तो सब कुछ खत्म हो चुका था। हुजूर देखते तो क्या देखते, लोग तो उस समय तक अपने-अपने घर तक जा चुके थे और मैदान साफ हो गया होगा।”

नवाब साहब- “क्या हाथी की लाश को भी इतनी जल्द उठा ले गये?”

सैयद- “हुजूर, गड्ढा खुदा तैयार था। उधर हाथी मरा, उधर उसे घसीटकर गड्ढे में डाल दिया। पाँच मिनट में उसे तोप दिया गया।”

सैयद- “हुजूर, मैंने मैदान छान डाला और जब मैंने देखा कि हुजूर तशरीफ नहीं लाए, तब यह समझ करके कि सर्दी की वजह से हुजूर ने आने का इरादा तर्क कर दिया होगा, मैं वापस चल दिया। गुलामज़ादे की हालत की वजह से सुबह को हकीमजी के यहाँ पहुँचना था। उसकी दवा-दारू से दोहपर को जाकर फुर्सत मिली। बस, अब खाना पाकर इधर ही आ रहा हूँ।”

नवाब साहब- “तो तुमने हाथी को फाँसी पर चढ़ते अपनी आँखों से देखा?”

सैयद- “हुजूर, खुदा की कसम, इन्हीं आँखों से देखा। अजब वाकया था। जिंदगी-भर नहीं भुलूँगा। कलंक इस बात का है कि हुजूर वक्त से न पहुँचे।”

नवाब- “लेकिन ऐसी भी क्या जल्दी थी, जरा सेवेरा हो लेने देते, तब उसे फाँसी देते।”

सैयद- “हुजूर, फिरंगियों के काम ऐसे ही होते हैं। वे अपने कामों को चाहे जलजला आवे और चाहे बिजली गिरे, एक मिनट भी इधर-उधर नहीं होने देते।”